अंतरंगिणी

तारा पांडे

प्रकाशक
अवध पब्लिशिंग हाउस लखनऊ

मूल्य २।)
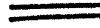
मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

दो शब्द

अपने या अपनी रचनाओं के विषय में कुछ कहना मैं नहीं चाहती, मैं तो सोचती हूँ कि हृदय की सच्ची अनुभूति स्वयं ही अपना और मेरा परिचय दे देगी।

मेरी अन्य रचनाओं की भाँति 'अंतरंगिणी' में भी काव्य का कोई चमत्कार नहीं, कल्पना की ऊँची उड़ान नहीं, और संगीत का सौन्दर्य भी नहीं, किन्तु जीवन का हास, रुदन, सुख और दुख मन को जिस भावना से भरते हैं उसी से प्रभावित होकर उर-वीणा के जो तार आप ही बज उठते हैं, यह तो उसी की झंकार मात्र है।

प्राणों के बिखरे हुए तारों पर बजने वाले बेसुरे गीत को 'संगीत' कहते हुए मुझे तो संकोच होता है।

बार-बार अपने ही सुख-दुख के गीत गाकर जो भूल करती हूँ उसके लिए पाठक क्षमा करें।

नैनीताल
१ सितम्बर १९४९

—तारा पांडे

लेखिका

जा पथिक, प्रभाती अब गा ले

उठ त्याग आज मोहक निद्रा,
क्यों प्रिय लगती तुझको तन्द्रा ?
दिनकर की अरुण किरण छाई
अवसाद न कर ओ मतवाले !

जाना है कितनी दूर अभी ?
आवेगा फिर क्या लौट कभी ?
बढ़ चल प्रकाश की बेला में
घिर आवें कब बादल काले !

किस अमर प्रेम का अनुरागी,
निज तन मन की ममता त्यागी,
आनन्द नहीं, अवसाद नहीं
लट बने बाल भी घुँघराले !

यदि प्रेम नहीं होवे जग में,
सब भिन्न चलें अपने मग में,
किसको भाता है जीवन में
अरमानों की बलि दे डाले ?

अपनी इच्छा से बन्दी बन,
हम रचते हैं नव-नव बंधन,
डूबे, उतराते ममता में
मन में लघु-लघु सुख दुख पाले !

उर में कैसी पीड़ा जागी?
बन गया बंधु! क्यों वैरागी?
तेरा ही है यह निखिल विश्व
आ, आज इसे तू अपना ले!

कवि, मंगल-गीत सुनाओ

अब तुम दुख के गीत न गाना,
मत करना अपना मनमाना,
निज मन का दुख भूल सखे,
जीवन में सुख बरसाओ !

दुर्बलता का पुतला मानव,
पाप, ताप से बना अखिल भव,
नव भावों की सृष्टि रचो कवि,
शिव, सुन्दर को अपनाओ !

अपनी भूल किसे है भाती,
उर में एक कसक रह जाती,
गा कर दुख के गीत अरे !
सोई पीड़ा न जगाओ !

जीवन-मुक्त करो मानव को,
जीवित आज करो तुम शव को,
जाग उठें चिर-निद्रित प्राणी,
कवि, तुम अमृत बरसाओ !

क्यों न मुझे सिखलाया तुमने

क्यों न मुझे सिखलाया तुमने
जीवन में आनन्द मनाना ?
अपने मन में भी मैं पल भर
नहीं गा सकी सुख का गाना।

जिस प्रसन्नता में निमग्न हो
बहता ही जाता है निर्झर।
मेरे उर में भी भर दो तुम
बंधु ! वही उत्साह निरन्तर।

सरिता की चिर चंचल लहरें
हँस-हँस कर आलिंगन करतीं।
इसी भाँति मैं भी न सदा क्यों
जग में हँसती-फिरती रहती ?

स्वाभाविक सुन्दरता पाकर
कली सुमन बन कर खिल जाती।
क्यों न वही सुन्दरता उड़कर
मेरे प्राणों में बस जाती ?

खग गाते हैं मुक्ति गीत नित
गुंजित होती डाल-डाली।
मधु से भरते फूल ये सभी
रीती रह जाती मेरी प्याली !

नित जिस उमंग से बढ़ती जाती सरिता

नित जिस उमंग से बढ़ती जाती सरिता
निर्बाध बहा करता है जिससे निर्झर !
मैं एक बूँद ही चाह रही हूँ उसकी
जीवित कर दे मृतप्राय हृदय को पल भर !

मानव कर पाता नहीं उपेक्षा मन की,
बिन प्रेम नहीं जी सकता कोई भू-पर !
वह जीवन है उपहास मात्र जीवन का,
मानव बन जाता जग में पशु से बढ़कर !

दुख सुख से निर्मित है मानव का अंतर,
उत्थान, पतन होता रहता है निशिदिन !
मैं हार गई पर जान न पाई निज को
व्याकुल रहती हूँ सदा इसी से पल-छिन !

जग उठें आज सोई इच्छाएँ मेरी,
कर दें फिर से निर्माण जीर्ण जीवन का !
मैं अपने ही में पूर्ण बन सकूँ सुन्दर,
भ्रम मिटे सभी मेरे इस पागल मन का !

लो, बहुत दिनों से श्याम घटा...

लो, बहुत दिनों से श्याम घटा
छाई नभ में काली, काली।
रिम-झिम-रिम-झिम बूँदें पड़तीं
करती हैं मन को मतवाली।

क्षण भर मेघों के अंचल से
पश्चिम में दीख पड़ी लाली।
हँस उठे सभी इस पल भर में
पत्ती-पत्ती, डाली-डाली!

कहते थे हम सब बचपन में
देखी जब नभ की यह होली,
'दादा की अगवानी के हित।
दादी बिखेरती है रोली!'

कितना सुन्दर था भाव और
कितनी सुखकर वह हँसी मधुर।
उन दिवसों की कर याद आज
मृदु पुलकों से भर जाता उर।

घिर उठी अरे! फिर श्याम घटा,
रिम-झिम, रिम-झिम पड़ती फुहार,
आषाढ़ मास का प्रथम चरण
कर देता कवि का मन उदार!

तुम क्यों लौट चले पल भर में ?

कौन देश से आए ?—
जाना आज कहाँ है तुमको ?
एक निमिष विश्राम करो,
मैं दीप जला दूँ घर में !

मैं सीमित हूँ सखे,—
कहो कैसे असीम बन जाऊँ ?
जान गई हूँ अपनी लघुता
व्यथा उमड़ती उर में !

गा न सकी जो गीत—
उसे ही तुम्हें सुनाऊँगी मैं !
बंधु ! तुम्हारे लिए आज
साधूँगी अपना स्वर मैं !

देना तुम अभिशाप—
मुझे वरदान बने वह सुन्दर,
अपने मन की मधुर व्यथा में
मिल पाऊँ घुल कर मैं !

ओ मेरे उपकारी !

दुख तापों से है मुझे बचाया तुमने ,
ऋजु सरल मार्ग जग में बतलाया तुमने ,
चिर मृत्यु भुला, अमरत्व दिखाया तुमने ,
तुम मेरे हितकारी !

मैं माता हूँ, जननी हूँ यह तब जाना ,
अपना यह रूप उसी दिन था पहचाना ,
माँ कहकर जिस दिन तुमने मुझको माना,
भूली मैं चिन्ता सारी !

मैं भूल न पाती क्षण भर बात तुम्हारी ,
'मातृत्व बिना है व्यर्थ, अपूरण नारी ,
हो गई धन्य माता जाती बलिहारी ,
हे परहित व्रतधारी !

कितनी दूर अभी है जाना ?

पक्षी नीड़ों में फिर आए,
नभ में बादल भी घिर आए,
संध्या की रक्तिम आभा में
ग्राम दीखता वह अनजाना !

निर्जन पथ में धूली छाई,
रवि किरणों की हुई बिदाई,
दीप जला अपनी कुटिया में
ग्रामवधू गाती है गाना !

बच्चे खेल रहे आँगन में,
धूलि भरे तन, उज्ज्वल मन में,
जन्म-भूमि हित जीना-मरना
गीत यही इनको सिखलाना !

नभ में श्याम घटा घिर आई !

गरजे अम्बर में जब बादल,
नाच उठा वन में मयूर-दल,
कृषक पा गए मन में नव-बल,
आशा-सी विद्युत लहराई !

गूँज उठा तब बहुत दूर पर,
एक मनोहर भूला-सा स्वर,
उतर स्वर्ग से आया भू-पर,
माँग रहा क्यों आज बिदाई ?

दो पक्षी आए उड़-उड़ कर,
बैठे सुखद नीड़ के अंदर,
इस जोड़ी पर स्वर्ग निछावर,
मानव को बंधन सुखदाई !

मेरा जीवन ज्योतित कर दो !

ज्योति रूप तुम, हे ज्योतिर्मय !
अंधकार मानस का हर दो !

रवि, शशि जो प्रकाश हैं पाते,
अंबर में दीपक जल जाते,
मैं इच्छुक हूँ उसी ज्योति की
एक किरण अंतर में भर दो !

मुग्ध शलभ खोता निज जीवन,
ज्वाला का करके आलिंगन,
जन्म-जन्म का शाप मिटाकर
आज उसे भी सुख का वर दो।

कली, फूल, पल्लव मुसकाते,
कलरव कर पक्षी नित गाते,
सोए जग को जगा सके जो
मुझको ऐसा जागृत स्वर दो !

गीतों के सँग नभ में उड़कर,
पार करूँ पृथ्वी, गिरि, सागर,
मानवता के कंठ-कंठ में
मेरी कविता का निर्झर हो !

नहीं अब मेरा पथ अनजान !

सागर से मिलती है सरिता
अपनापन सब खो कर,
जीवन भर को हो जाता तब
दुख-सुख एक समान !

चाहा था नव-स्वर्ग बसाऊँ
इस क्षणभंगुर भू पर,
समाधिस्थ हो गए आज
मेरे पिछले अरमान !

रंग-बिरंगे पक्षी बन में
गाते हैं उड़-उड़ कर,
इनके स्वर में अपना स्वर भर
गाती हूँ मैं गान !

मधुऋतु में कोयल की वाणी
सूनापन देती भर।
जाने किससे माँगा करता
पागल मन वरदान ?

पावस के घन काले-काले
छा जाते हैं नभ पर
ढूँढ रहे विद्युत में किसको
मेरे व्याकुल प्राण ?

मन को मोहित करती आई !

मन को मोहित करती आई
शरद् - चाँदनी सुन्दर,
चूम कली को कुसुम बनाया
दे यौवन का दान !

पतझड़ में सुन पड़ता केवल
पत्रों का ही मरमर।
कलाकार उसमें भी पाता
चिर सौन्दर्य महान !

सुन्दर और असुन्दर दोनों
रहते हैं हिल मिल कर,
अंधकार के बिना व्यर्थ है
दीपक का अभिमान !

अपने मन की ज्योति जलाकर
आगे बढ़ूँ निरन्तर
बहुत दिनों का भूला मैंने
मार्ग लिया पहचान !

बीत गई बरसात !

बन्द हुआ घन गर्जन नभ का
सजल प्रकृति का आँगन,
किन्तु नहीं रुकता है मेरे
मन का झंझावात !

पागल मन से होड़ लगा कर
हार गए हैं बादल,
कैसे समझ सकोगी आली,
हार-जीत की बात !

क्यों कोयल की कूक सुहाती ?
बेसुध होते प्राण,
कितने ही रहस्य जीवन के
बने रहे अज्ञात !

निशि दिन बीत रहे हैं पल छिन,
बीते शैशव यौवन,
सजल बना कर बीत गई अलि,
आँसू की बरसात !

गायक ! तुम गाओ करुण राग !

मैं भूल गई हूँ अपना स्वर,
सुधि आती, आतीं आँखें भर,
कब पोंछ सकोगे गाकर तुम
मेरे कपोल के अश्रु-दाग !

परहित होवे जीना, मरना,
जीवन हो सुख-दुख का झरना,
दुखियों की व्यथा मिटाने को
मैं दूँ अपना सर्वस्व त्याग !

दुर्बल मन में ही रहता भय,
भय देता है दुख को प्रश्रय,
मानव मानव के रहे पास
गायक, तुम गाओ यही राग !

नवयुग की बेला में महान,
नव जन्म मिले, हो नव-विहान,
इस अर्ध निशा में एक बार,
गाना ही है तुमको विहाग !

मैं हूँ नूतन पथ से अजान,
क्या मिल पाएगा मुझे स्थान ?
गा कर करुणा के गीत मधुर
कह दो तुम 'सोए हृदय जाग !'

तुमको बाँध चुकी हूँ मन में !

संध्या की बेला यह सूनी,
आकुलता बढ़ जाती दूनी,
रवि भी बँधा हुआ है देखो
अपनी किरणों के बंधन में !

बैठ नीड़ में चोंच मिला कर,
अपने उर में स्वर्ग बसा कर,
पक्षी कहते—'जान गए हम
सुख से रहना इस जीवन में' !

एक समय ऐसा है आता,
जब स्वप्नों का जगत सुहाता,
सीमाहीन मधुर आशाएँ
रंग भरा करतीं यौवन में !

बाँध तुम्हें क्या मुक्त बनी मैं ?
पीड़ाओं की बनी धनी मैं !
समझोगे तब, खो जाऊँगी
जब मैं अपने सूनेपन में !

तुमको बाँध चुकी हूँ मन में !

दीप जला, सखि, संध्या आई!

चिर जीवन का मेरा प्यारा,
पश्चिम-नभ में झलका तारा,
कुटिया में भी तम भर आया
झींगुर ने झनकार सुनाई!

क्या गाऊँ? क्या आज सुनाऊँ?
कैसे अपना मन वहलाऊँ?
बचपन औ' यौवन में मैंने
केवल मर्म व्यथा ही पाई!

आई है संध्या की बेला,
मेरा मन सुनसान अकेला,
दीख रही है बहुत दूर पर
वह जाने किसकी परछाई!

दीप जला सखि, संध्या आई!

स्वप्नों की बेला अब बीती !

जाने कैसे आया वह क्षण,
मिला मुझे जब कविता का धन,
ललित कल्पना के पंखों में
उड़ कर सोचा था मैं जीती !

स्वप्नों की दुनियाँ मनमानी,
रही जगत में सदा अजानी,
जल, बुझ एक निमिष में ही वह
आज कर गई मुझको रीती !

मुझे मिला है सुख का प्याला,
पर न बुझ सकी मन की ज्वाला,
परवशता में रह कर, अपनी,
आँखों का ही पानी पीती !

चुप हो जा ओ गानेवाले

तू न मुझे दिखलाई देता,
तेरा स्वर मन को हर लेता,
आधीरात, मार्ग अँधियारा
आऊँ कैसे ओ मतवाले?

मैं न ठहर पाऊँगी पल भर,
सुन कर तेरे गीत मनोहर,
आज कहाँ से आया, मेरे
प्राणों में मँडराने वाले!

सूनापन है रात अँधेरी,
प्रातः होने में है देरी,
संचित कर लेने दो मुझको
वे सपने जो बिखरा डाले!

कब से तूने गाना सीखा?
गा कर दुख बिसराना सीखा?
किसकी लगन लगी है उर में?
कैसे तेरे भाव निराले!

कवि क्यों निशि दिन गाता !

दुनियाँ आज लगी है कहने
'हमें नहीं भाते ये सपने
कब किसके हो पाते अपने ?'
नहीं समझ में आता !
पागल कवि क्यों गाता ?

कवि कहता मन में मुसका कर
इन गीतों में जीवन का स्वर
कर देता सर्वस्व निछावर
जो इनमें रम जाता !'
आकुल हो कवि गाता !

कर पाता वह दुख को अपना,
समझ सका जो सुख को सपना,
शेष नहीं उसको कुछ कहना,
केवल गाना भाता !
भावुक हो कवि गाता !

जीवन में सुख जान न पाए,
आँखों से नित अश्रु बहाए,
उनको क्या कहकर बहलाए,
जिनका कवि से नाता ?
प्रेमी कवि है गाता !

कोई आ जग में सुख पाते,
कोई ऊब यहाँ से जाते,
किसी भाँति तब रोते गाते
पथ सब को मिल जाता!
मुक्ति हेतु कवि गाता!

ऊँचे गिरि से बहता निर्झर !

कहता है 'मैं भी हूँ प्यासा
है असीम उर में अभिलाषा'
निशि दिन मिलने की आतुरता
कभी नहीं रुक पाता पथ पर !

खोए आँसू यदि मिल पाते,
कितने ही झरने बन जाते,
किस सागर में लय होते वे
बहते कैसे प्रतिपल झर-झर ?

ऊँचे से नीचे क्यों आया ?
किसने इसको प्रेम सिखाया ?
जाने कब से पूछ रही हूँ
किन्तु नहीं मिलता है उत्तर !

ऊँचे गिरि से बहता निर्झर !

क्या लेकर अभिमान करूँ मैं

भूल गए पथ आने वाले,
चले गए सब जाने वाले,
उर मन्दिर में दीपक बाले
अब किसका आह्वान करूँ मैं?

बीत गई बेला यौवन की,
सुख दुख की, उत्थान पतन की,
सोई है पीड़ा जीवन की,
आज कहाँ अरमान धरूँ मैं?

मैंने चित्र अनेक बनाए,
किन्तु न वे पूरे हो पाए;
जग में नूतन भाव जमाए
ऐसा क्या निर्माण करूँ मैं?

भूल रहे तारे अम्बर में,
बूँदें छिपी हुई सागर में,
बैठा जो मेरे अन्तर में,
उसकी ही पहचान करूँ मैं!

मेरे गीत न भू पर आते !

मेरे गीत न भू पर आते !
नील गगन में उड़ उड़ जाते !

कहते हैं 'जग है क्षणभंगुर,
और हमारी इच्छा सुमधुर'
नित स्वप्नों का लोक बसाते !
मेरे गीत न भू पर आते !

गति बन कर लहरों में मिलते,
वन में फूलों के सँग खिलते,
विहगों में हिल मिल कर गाते !
नील गगन में उड़-उड़ जाते !

निशि में तारों की आभा बन,
बनते दुखिया आँखों के धन,
मानव का 'देवत्व जगाते !
मेरे, गीत न भू पर आते' !

तीर पर नौका बँधी

गाता विदेशी गीत सुन्दर !

हो गईं लहरें तरंगित,
सजल आँखें, हृदय पुलकित,
वेग से बहने लगा वह
दूर का निर्वाध निर्झर !

ले चुके दिनकर बिदाई,
विजन-पथ में धूल छाई,
वायु में लहरा उठा सखि,
वह पहाड़ी गान का स्वर !

जल गए दीपक गगन में,
भर गया अवसाद मन में,
किस निराशा को लिए
बाँधी पथिक ने नाव तट पर ?

नदी के उस पार कोई,
विरहिणी अनजान रोई,
डाल पर बैठी पिकी भी
उड़ गई कुहु कू सुनाकर !

तीर पर नौका बँधी,
गाता विदेशी गीत सुन्दर !

गूँज उठे अलि वन-उपवन में !

करने को स्वागत ऋतुपति का ,
विहँस खिली वह वन की कलिका ,
गाकर अपने पंचम स्वर में
पिकी घोलती मधु कण-कण में !

जंगल में फिरता वह ग्वाला ,
वंशी की धुन में मतवाला ,
नभ से टकराकर स्वर लहरी
मिल जाती उस शून्य विजन में !

गुन-गुन कर अलि गाने गाते ,
कलियों के नव प्राण लजाते ,
चूम अधर कोमल पंखुरियाँ
प्रेम जगाते चंचल मन में !

कलि के दल खुल के मुसकाए ,
पुलकित हो अलि उड़-उड़ आए ,
जग जीवन की सुधि बिसरा कर
मुग्ध हुईं कलि अलि गुंजन में !

गूँज उठे अलि वन-उपवन में !

मुरझाई जो बिन खिली कली

मुरझाई जो बिन खिली कली
उसमें कैसे दूँ जीवन भर?
सब तार टूट कर बिखर पड़े
कैसे गाऊँ इस वीणा पर?

मैं भूल गई थी अपना स्वर
अभिशाप मिला जब जीवन में।
पीड़ा से व्याकुल हो रोई
अवसाद भर गया था मैं।

सब नए नए स्वर तालों पर
गाते हैं नूतन मधुर राग,
मैं करती हूँ केवल गुन-गुन
'मानव के सोए हृदय जाग!'

सब हँसते, मैं भी हँस देती,
चाहे मन में हो सूनापन!
रोती हूँ औरों के दुख में
मैं भूल गई हूँ, अपनापन!

मैं झूम-झूम कर गाती !

सखि, इस दो दिन की दुनियाँ में
मैं अपनापन दिखलाती !

मेरी नीरस-सी घड़ियों में
रस बरसाने आया।
भूल गई थी अँधियारे में
मार्ग दिखाने आया।

मीठी थपकी दे-देकर
बच्चे को आज सुलाती !
मैं झूम-झूम कर गाती !

सूरज की हँसमुख किरणें जब
नव प्रकाश भर जातीं,
मुक्त गगन में चिड़ियाँ उड़कर
मधुर प्रभाती गातीं।

कोमल अधर चूम बच्चे के
प्रातःकाल जगाती !
मैं झूम-झूम कर गाती !

बच्चे के सँग रोती हूँ
बच्चे के सँग गाती !

इसकी हँसी प्राण में मेरे
मधुर सुधा बरसाती।

न्योछावर मन, प्राण इसी पर
पल भर मैं मुसकाती!
मैं झूम-झूम कर गाती!

बीती रात, स्वप्न भी बीते !

पूर्व गगन की शोभा आली,
जीवन में भरती उजियाली,
जग उठते तरु, पल्लव, डाली,
मेरे मूर्छित प्राण न जीते!

मैं तो हूँ स्वप्नों की रानी,
मेरी व्यथा सदा अनजानी,
बनी वेदनापूर्ण कहानी,
बीत गए दिन आँसू पीते।

बैठ अकेली गाना गाती,
नूतन रेखाचित्र बनाती,
इनसे अपना मन बहलाती,
कण-कण लगते मुझको रीते!

मधुर गीत कैसे गाऊँ मैं !

मधुर गीत कैसे गऊँ मैं ?
वीत चली मधु-बेला ।
शुष्क डाल पर फूल झूलता
परिमल-हीन अकेला !

कहाँ आज भ्रमरों की गुन-गुन ?
कहाँ कोकिला गाती ?
अब न किसी की बाट जोहती
कली मधुर मुसकाती !

स्निग्ध तूलिका रंग नहीं हैं
कैसे चित्र वनाऊँ ?
जीवन की चिर-साध यही है
कलाकार बन जाऊँ !

क्षुद्र लेखनी लिखती रहती
निशि दिन करुण कहानी ;
समझ नहीं पाता है कोई
रह जाती अनजानी !

जग को चाह रही मधुवन की
मेरा उपवन सूखा ,
मधु केवल सपने में देखा
बीता यौवन रूखा !

मधु ऋतु में मुझको दे डाला
वह अभिशाप अजाना।
पतझड़ में वसन्त-वर दे कर
चाहा मुझे हँसाना!

कैसे हो स्वीकार मुझे यह?
मन मेरा अभिमानी!
दुख-सुख एक समान जान कर
पीती खारा पानी!

जीवन कैसे मधुर बनाऊँ ?

स्नेह लिए दीपक है जलता
करता जग को ज्योति प्रदान,
मैं जलती हूँ व्यथा को लिए
प्रतिपल रहते आकुल प्राण,
अंधकार बढ़ता ही जाता
कैसे निज मन को समझाऊँ ?

यदि हो क्षण भर का ही जीवन
बने फूल-सा वह सुन्दर,
सौरभ फैले दिशा-दिशा में
मिले हृदय को प्रेम अमर,
मधु से भर जावे मेरा उर
चाहे मैं फिर मुरझा जाऊँ !

हसता-सा संसार नया यह
मेरा जीवन आया,
रोम-रोम पुलकित हैं मेरे
प्राणों ने आनन्द मनाया,
असमय का है साज सजा
कैसे अब इसको अपनाऊँ ?

दूर करूँगी अलि, मैं अपने
मानस का चिर-अँधियारा।

बंधन में ही मुक्ति छिपी है
क्यों समझूँ जग को कारा ?
निखिल विश्व के कण-कण को
कैसे अपना संदेश सुनाऊँ ?

किसे सुनाऊँ ? कौन सुनेगा ?

किसे सुनाऊँ ? कौन सुनेगा ?
मेरी अपनी कथा पुरानी।
कितनी बार कही है मैंने
फिर भी पूर्ण न हुई कहानी।

बचपन का उल्लास न देखा,
खेल कूद से रही अजानी।
मुरझाई-सी, डरी हुई-सी
भर लाती आँखों में पानी।

यौवन का उन्माद न जाने
कैसा होता है जीवन में!
मैंने तो उच्छ्वासों का ही
हाहाकार सुना था मन में।

साक्षी हैं ये नभ के तारे
जिनको अपनी कथा सुनाई।
साक्षी मेरे गीतों के स्वर
गा कर जिनमें व्यथा बताई।

आज नहीं वे बचपन के दिन,
कैसे हँस कर समय बिताऊँ ?
भूल गई यौवन के सपने
पुलकित हो कैसे मैं गाऊँ ?

कहता है पुकार कर कोई
'विस्तृत है तेरा पथ आली!'
किन्तु नहीं अब खिल पावेगी
मेरी सूखी जीवन-डाली!

स्वप्न बीते किन्तु...

स्वप्न बीते किन्तु उनकी सुधि न सजनी, बीत पाई !

आज मैं खोई हुई-सी
एक करुणा-गीत गाती।
याद कर बीते दिनों की
आँख से आँसू बहाती !
नग्न हैं तरु, हो रही है शुष्क पत्रों की विदाई !

था वही जीवन सुखद जब
धूलि में लिपटा हुआ तन।
और स्वप्नों से मधुर
आशा उमंगों से भरा मन।
सुखद बचपन, मधुर यौवन, मृदु-स्मृति मुझको सुहाई !

बँध गई हूँ मैं जगत में
बँध गए ये प्राण मेरे।
जा छिपे किस लोक में
वे स्वप्न के वरदान मेरे ?
खेत के उस पार से सखि, बाँसुरी किसने बजाई ?

तुमको प्रणाम ओ कलाकार !

मर कर जीवित रहने वाले,
ओ विश्व प्रेम के मतवाले,
तुम कवि, गायक, औ' चित्रकार !
तुमको प्रणाम ओ कलाकार !

कवि की वाणी में है अमृत,
कर देती मृतकों को जीवित,
भर देते जग में अमित प्यार !
तुमको प्रणाम ओ कलाकार !

गायक गाता संगीत मधुर,
बेसुध हो जाता चंचल उर,
बरसाता रस की सुधा-धार
तुमको प्रणाम ओ कलाकार !

अपने भावों को कर संचित,
जब चित्रकार करता चित्रित,
मानव का मन बनता उदार !
तुमको प्रणाम ओ कलाकार !

प्राणों में भर दो हरियाली,
रँग से भर दो रीती प्याली,
गीतों में जागृति की पुकार !
तुमको प्रणाम ओ कलाकार !

दुख की साथी रजनी !

तम के आँचल को फैलाकर,
नभ में तारक-सुमन खिलाकर,
अश्रु भरी आँखों के अन्दर
छिप जाती अवनी !

कभी मधुर-से सपने लाती,
माता-सी बन चाँद दिखाती,
अंधकार में अश्रु छिपाती,
मुस्काती सजनी !

मधुर-मधुर पीड़ा की कसकन,
सूनी रजनी के सूने क्षण,
व्याकुलता से भरा हुआ मन,
रात बनी अपनी !

वरदान जिसे मैं समझे थी

वरदान जिसे मैं समझे थी
अभिशाप हुआ है जीवन का,
आनन्द जिसे कहता था जग
अवसाद जगाता वह मन का।

दुख-ज्वाला में ही मानव का
मन तपता औ' उज्ज्वल होता,
बहता है भावुक उर में ही
कोमल कविता का मृदु सोता।

पागल मन की है चाह यही,
प्राणों को सपनों से भरना,
स्वप्नों से ही जीना जग में
फिर सपने लेकर ही मरना।

मेरे जीवन की साध मधुर,
गीतों में हो जीवन के स्वर,
आधार बनें शिव, औ' सुन्दर,
आँखों में करुणा के निर्झर!

नदी तीर क्यों मुझे सुहाता ?

कल-कल करके जल का बहना
मेरे प्राणों को अति भाता !

अपनी अन्तिम आभा से जब
रवि किरणें लहरों को रँगतीं,
सन्ध्या के सुनसान स्वरों से
क्यों तब मन बेसुध हो जाता ?

लौट-लौट कर पक्षी सारे
छिप जाते अपने नीड़ों में,
दूर किसी राही का मृदु स्वर
रह-रह कर मन, प्राण कँपाता !

तट पर बाँध एक क्षण नौका
बैठ गया नाविक अनजाना,
किसकी सुधि में होकर पागल
आँखों से पानी बरसाता ?

माँ, तुम आकर मुझे सुलाओ !

धीरे-धीरे थपकी दे कर
गुन-गुन करके लोरी गाओ !

नींद भरी मेरी आँखों में
चुपके-से जब सपने आवें
तुम भी उन सपनों में आ कर
सहज भाव से मृदु मुसकाओ !

माँ बन कर भी मेरे उर को
क्यों बचपन के भाव सुहाते ?
मुझे छिपा अपने आँचल में
बाँहों में भर, हृदय लगाओ !

जो उज्ज्वल नक्षत्र गगन में
सबसे पहले झिलमिल करता,
उसमें तुमको ढूँढा करती
किन्तु कहाँ हो तुम बतलाओ ?

सखि, कर ले शृंगार फूल से!

किन्तु न रोना तू जग में
यदि विंधना भी हो कठिन शूल से!

जीवन को प्रिय लगता हँसना,
अति अबाध ज्यों बहता झरना,
किन्तु न भय से कातर होना
रोना ही यदि पड़े भूल से!

नौका खेता जाता नाविक,
तू बैठी रहना स्वाभाविक,
विचलित कभी न होना री,
यदि तुझे भटकना पड़े कूल से!

जग-जीवन निर्मित दुख, सुख से,
खेल मिचौनी सुस्मित मुख से,
किन्तु न पछताना क्षण भर
यदि कभी खेलना पड़े धूल से!

मेरे कवि, गाओ एक बार!

मुझको भाता नक्षत्र लोक,
छवि जिसकी हरती सकल शोक,
लघु करते मन का दुःख भार!

पागल-मन का विश्वास यही,
मरने पर जाते सभी वहीं,
पहुँचा दो मेरी भी पुकार!

दुख सुख उर को विचलित करते,
ये प्राण सदा आकुल रहते,
स्थिर कर दो मेरा मन उदार!

मोहक संगीत तुम्हारा सुन,
भौंरे भूलें करना गुन-गुन,
फैला वन में सौरभ अपार!

मधु भर दो जीवन में गाकर,
मैं लूँ भू अपने दुख का स्वर,
निर्धन जग को दो अमर प्यार!

पतझड़ की सुन्दरता भाती !

पीले पत्ते हैं झर पड़ते,
नव-जीवन का स्वागत करते,
जीवन का चिर सत्य यही है
बार-बार यह मुझे सिखाती !

गायें शीघ्र लौटती हैं घर,
पंछी भी फिर आते सत्वर,
सरिता की उज्ज्वल लहरों को
रवि किरणें स्वर्णिम कर जातीं !

कहाँ गई सुन्दर हरियाली,
सूखीं हैं सब डाली-डाली,
वृक्षों के कंकाल दीखते
लिए हृदय में स्मृति की थाती !

पतझड़ की सुन्दरता भाती !

गुन, गुन, गुन, मैं गाना गाती !

गुन, गुन, गुन मैं गाना गाती !
गा कर पागल मन बहलाती !

भ्रमर झूम उठता फूलों पर,
सुन कर अलि, मेरा मादक स्वर,
मैं अपने ही मृदु गीतों से
स्वप्नों का संसार सजाती !

पंखुरियाँ सूखे फूलों की
याद दिलाती है भूलों की !
जीवन की अति करुण कहानी,
बरबस प्राणों में बस जाती !

संध्या की आकुल-सी लाली,
भर जाती जब रीती प्याली,
अमर निराशा से व्याकुल हो
जीवन-संध्या आज बुलाती !

सखि, बंधन ही मुझको भाए !

तन, मन की नव-नव सुन्दरता
प्राणों में अनुराग जगाती।
छोड़ त्याग का रूखा पथ अलि,
मैंने बंधन गले लगाए !

जग की कटुता और मलिनता
जीवन में अनुताप भर गई,
अपने उर के मधुर स्नेह से
मैंने कोमल भाव जगाए !

सकल विश्व जिससे भय पाता।
मैं उससे मिलने को आतुर
स्वागत करने को उत्सुक हूँ
यदि वह मुझसे मिलने आए !

एक दिवस मेरे ये बंधन
मुझे मुक्ति-पथ दिखलाएँगे,
बंधन में ही मुक्ति छिपी है
कण-कण मुखरित होकर गाए !

मिलन मेरा चिर मधुर हो!

दुःख को भी सुख बनाया
सजनि, मैंने गीत गा कर,
मिलन की इच्छा जगी अब
हृदय में चिर-विरह पाकर,
आज मंगलमय क्षणों में
मौन भी मेरा मुखर हो!

सुनहरी हो सांध्य बेला
लौटती हों गाय घर को,
धूलिमय वह विजन पथ
अवसाद से भर जाय उर को।
तभी तुम आओ कुटी में
हासमय मेरे अधर हों!

कर गया उज्ज्वल हृदय को
सजनि, मेरा दुख निराला।
प्राण की अनुभूति ले कर
बिखर पड़ती अश्रु-माला।
सिद्धि पाऊँ या न पाऊँ
साधना मेरी अमर हो!

गाते-गाते टूट गया स्वर !

रह-रह उर में होता स्पन्दन ,
युग बन जाते जीवन के क्षण ,
कैसे बहलाऊँ अपना मन ?
जो था गीतों पर ही निर्भर !

सोई है मेरी भावुकता ,
बढ़ती ही जाती व्याकुलता ,
केवल आहों की निष्फलता ,
बहता है आँखों से निर्झर !

कैसे उसको आज बुलाऊँ ?
कैसे स्वागत करने जाऊँ ?
प्राणों का क्या राग सुनाऊँ ?
कर दे मिलन अमर औ' सुन्दर !

दीप प्रवाहित कर गंगा में

दीप प्रवाहित कर गंगा में
भेज रही अपना संदेश
चंचल लहरें हिला-हिला कर
पहुँचा देंगी माँ के देश।

जिसके बिन बचपन के वे दिन,
धूलि मलिन हो बीत गए।
जिसका स्नेह सदा ही उर में
भर देता है भाव नए।

माँ, माँ, कह कर व्याकुल होती
अब भी एकाकीपन में।
सूनापन ही घेरे रहता
जाने क्यों इस जीवन में?

कह देना मेरी जननी से
अति आकुल हैं मेरे प्राण।
दे देना दो अश्रु भेंट में
और सुना देना यह गान!

दुख जग उठता है प्राणों में

दुख जग उठता है प्राणों में
सुन कर चातक की अमिट व्यथा।
'पी' 'पी' किससे कहता सखि, यह ?
है कैसी इसकी करुण कथा ?

कोई कहता 'पागल' इसको
सुन 'पी' 'पी' की अगणित पुकार,
पर किसी-किसी भावुक उर में
मचला करता है करुण प्यार।

अपने जीवन की घड़ियों को
यह काट चुका है 'पी' 'पी' कह।
जाने किन मधुर तरंगों में
जाता इसका चंचल मन बह।

सखि, इसका मधुर मनोहर स्वर
मेरे प्राणों को अति भाता,
अनुभव होता अलि, है इससे
मेरे अन्तर का चिर-नाता।

पी स्वयं वेदना का प्याला
यह किससे है 'पी' 'पी' कहता ?
उर में रख अपने प्रियतम को,
बन-बन में क्यों ढूँढा करता ?

घिरते हैं नभ में बादल ?

घिरते हैं जब नभ में बादल !
झूम झूम उठता मन पागल !

भावुक बन कर हँसती, रोती,
सखि, मैं अपनापन सब खोती,
रंग बदलते, रूप बदलते
उज्ज्वल कहीं, कहीं हैं श्यामल !

घिर-घिर आते, गर्जन करते,
शुष्क तृणों में जीवन भरते,
रिमझिम, रिमझिम बरसा करता,
नभ की आँखों का निर्मल जल !

अमृत वह, जो देता जीवन,
सत्य वही जो करता पावन,
अलि, मेरी आँखों का पानी
व्यर्थ गया क्या ? बरसा पल-पल !

अन्तरतम की प्यास न बुझती,
सोई पीड़ा क्यों जग उठती ?
किसी अपरिचित का परिचितस्वर
कर देता है मुझे क्यों विकल ?

मुझसे दूर हो तू दूर!

ओ शलभ, मेरे हृदय में अग्नि है भरपूर!

अपने अन्धकार से आकुल,
चिन्ता से तू रहता व्याकुल,
क्यों प्रकाश को चाह रहा रे, हो कर मद में चूर!

ढूँढ रहा है कौन सत्य तू?
समझ रहा जग को अनित्य तू?
अमर प्रेम हित त्याग देह, पर समझ न मुझको क्रूर!

कैसे मैं तुझको अपनाऊँ?
कैसे अपना प्रेम दिखाऊँ?
ताप लिए जलता हूँ जग में, मन दुख से। भरपूर!

मुझ से दूर हो तू दूर!

सखि, क्यों रहता आकुल यह चित ?

किस लिए यहाँ ऐसी उलझन ?
क्यों निशि, दिन, पल, छिन परिवर्तन ?
किसको मिल पाता जीवन में
अपने ही मन का सुख इच्छित ?

संध्या का वह एकाकीपन,
मन में भर देता सूनापन,
वे दूर दूर की रेखाएँ
करतीं जाने कैसा इङ्गित ?

मिटते जाते हैं वे सपने,
जो कभी बने थे प्रिय अपने,
सब रंगहीन, आभा विहीन,
उसदिन जिन पर था मन मोहित।

दीपक में पड़ता है पतंग,
ले उर में मरने की उमंग,
रंगीन, सुनहरी इच्छाएँ
हैं दीपशिखा पर ही सीमित !

सरिता की लहरें हिल-मिल कर,
कण-कण में भरतीं हास अमर,
मैं मन्त्र मुग्ध सी देख रही,
सब अनजानी, पर चिर परिचित !

सब से प्रिय वह नक्षत्र लोक,
छवि जिसकी हरती सकल शोक,
गिन पाया उनको कौन यहाँ?
वे हैं असंख्य, वे हैं अगणित!

मैं पथ में हूँ पलक बिछाती !

संभव है आ पहुँचे अब वह,
पुलकित होता है मन रह-रह,
अपने ही भावों में बह-बह,
प्राणों का मैं दीप जलाती !

नित अभाव की पूजा करती,
जीवन में सूनापन भरती,
सजनि, सदा मैं उन्मन रहती
आँखों से आँसू बिखराती !

फूल उठी क्यों सूखी डाली ?
असमय बोली कोयल काली,
क्या रहस्य है जग का आली !
सोच-सोच केवल रह जाती !

श्यामवर्ण आवेगी सजनी,
(होगी जब अँधियारी रजनी),
छोड़ चलूँगी मैं तब अवनी,
मृत्यु मुझे निजरूप दिखाती !

मैं पथ में हूँ पलक बिछाती !

सजनि, मेरे स्वप्न के सब दिवस बीते !

स्वप्न में ही रच लिया संसार सुन्दर,
उड़ गई मैं व्योम में पा कल्पना-पर,
स्वप्न में था हृदय का सुख
कल्पना में झूम उठता था मधुर स्वर,
मैं प्रकृति में मिल गई थी अश्रु पीते !

बन गया था दुःख भी मेरा निराला,
हँस उठी थी पहन कर मैं अश्रु-माला,
सखी, क्यों उस दिन न जाने
पी गई मैं वेदना से भरा प्याला ?
भर न पाए किन्तु वे अरमान रीते।

मिटे मेरे सुनहरे रंगीन सपने
भूल बैठी गीत के स्वर - ताल अपने,
आज भी उस कल्पना के
स्पर्श से ही देखती हूँ मधुर सपने
सत्य के सनमुख सजनि, क्या स्वप्न जीते ?

कितना सुन्दर सखि, यमुना-जल

कितने वर्षों के वाद आज
मैं फिर यमुना से मिल पाई।
माता औ' पिता मिले मानो
उस मधुर स्नेह की सुधि आई,

लहराता दीख पड़ा मुझको
लहरों में माता का अंचल!

उस पार गा उठा जब नाविक
'था बाँध रहा नौका तट पर'।
तब ठिठक गई ग्रामीणा वह
सुनकर परिचित गीतों का स्वर।

विस्मित होकर मैं देख रही
मानव जीवन के मोहक पल?

अंजलि भर फूल चढ़ाए थे
बह गए न जाने कहाँ? किधर?
फिर उसी ओर बह चला दीप
निजजल-पथ को आलोकित कर।

विस्मय-विमुग्ध मैं सोच रही
लेकर अपना यह मन पागल।

दिन रात किसे ढूँढा करता

दिन रात किसे ढूँढा करता
यह पागल-सा सजनी ?

खेली हूँ इसकी लहरों से
प्रत्येक लहर प्रति पल अशान्त।
जाने किससे कहता व्याकुल
हो युग-युग की गाथा अपनी ?

कितना विशाल है जलधि, किन्तु
है छिपा प्राण में दुख महान।
किसके चरणों की लगन लगी,
यह भूल गया ऊषा रजनी ?

रत्न अनेकों भरे पड़े
वैभवशाली है अन्तरतम।
करता क्यों हाहाकार सदा ?
हँसती रहती इस पर अवनी!

दिन रात किसे ढूँढा करता
यह पागल-सा सागर सजनी!

झूम उठता है मन अनजान !

झूम उठता है मन अनजान !
देख नभ में तारे द्युतिमान !

न जाने कैसी आती याद,
घेर लेता मन को अवसाद,
सिहर उठते हैं मेरे प्राण !
मिट गए प्राणों के अरमान !

कहाँ है जीवन की वह साध ?
कहाँ है मन का स्नेह अगाध ?
गई हूँ भूल हृदय का गान !
बन गया मेरा पथ अनजान !

पूछता रहता ही संसार
'मिल गया क्या सुख का आधार !'
कहूँ कैसे मैं हूँ अज्ञान !
मुझे सुख दुख हैं एक समान !

भूलना ही होगा इस बार,
जगत का रूखा-सा व्यवहार ;
मिलेगी मुझको शान्ति महान !
देख नभ के तारे छविमान !

क्यों मुझको इतना आकर्षण

क्यों मुझको इतना आकर्षण
पश्चिम की इस लाली में ?
घंटों देखा करती इसको
बन जाती मतवाली मैं !

गोपद धूलि उड़ा करती जब
छा जाता पथ में अँधिआरा !
एक मधुर सौन्दर्य बिखरता
तृण, तरु, डाली - डाली में !

कहते हैं सब 'गीत न गाओ ,
आज विश्व में कार्य अनेकों'
क्या उनका मन नहीं मोहता
इस बेला की लाली में ?

कभी जगा जाती थी ऊषा
आज मुझे संध्या ही भाती ,
भर-भर जाती है जाने क्या
मेरी जीवन - प्याली में !

छू पाती जोएक वार भी
पश्चिम की इस लाली को !
सोच रही उड़कर जाती
यदि होती पंखों वाली मैं !

गीत मत गा ओ प्रवासी !

गीत मत गा ओ प्रवासी !
शून्य में टकरा उठा स्वर
भर गया मन में उदासी !

आम्र कुंजों में छिपी
कोयल कुहुकती रात-दिन,
अलस हैं कलियाँ विपिन में
हो रहीं व्याकुल मधुप बिन !
प्रिय भ्रमर भी बन गए हैं
आज प्रेमिक, मधुर भाषी !

मधुभरे ऐसे दिवस
इस जन्म में आए न क्यों ?
गीत सुख के एक क्षण भी
हृदय को भाए न क्यों ?
शुष्क हैं सब स्रोत जग के
रह गई मैं बंधु ! प्यासी !

सांध्यबेला धूलि छाई
विजन पथ में तिमिर भर कर !
जब जगा नभ का सितारा
जल गए तब दीप घर घर !
शून्य में टकरा उठा स्वर
भर गया मन में उदासी !

गीत मत गा ओ प्रवासी !

सागर की लहरों का गर्जन

सागर की लहरों का गर्जन !
सुन प्राणों में होता कंपन !

छोटी-छोटी सीप पड़ी हैं सिंधु किनारे ,
ऊपर नभ पर झिलमिल करते हैं ज्यों तारे ,
बढ़ता ही जाता आकर्षण !
सुन सागर की मोहक गर्जन !

देख-देखकर तृप्ति नहीं होती है मन को ,
सार्थक करती हैं नदियाँ अपने जीवन को ,
तन, मन में होती है सिहरन !
देख भीम लहरों का नर्तन !

किसने इसको बाँध दिया है यों बंधन में ?
किसका है आह्वान विफल सागर के मन में ?
लौट-लौट पड़ता उर-उन्मन !
भर असीम आकुल सूनापन !

कवि के जीवन में है कविता

कवि के जीवन में है कविता
कविता में है कवि का जीवन !

उद्भ्रान्त पथिक बैठा पल भर
अपने पथ की चिन्ता करता !
जनहीन मार्ग, वह एकाकी
हो उठता रह-रह मन उन्मन !
आँसू के कण-कण में कविता
कविता में मिलते आँसू कण !

देखा है उपवन में जाकर
फूलों, कलियों का मुसकाना !
व्याकुल भौंरा तब घूम-घूम
प्रेमिक बन करता है गुन-गुन !
प्रत्येक फूल ही है कविता
मोहित इन पर है कवि का मन !

जो मिल न सकेगा जीवन में
उसकी क्यों इतनी है इच्छा !
रहता जो हमसे दूर बहुत
उसमें क्यों होता आकर्षण ?
मानव के जीवन में कविता
कविता में है मानव-जीवन !

कौन अभिशाप कौन वरदान ?

कौन अभिशाप ? कौन वरदान ?
मुझे दोनों हैं एक समान !

नहीं मिलती है मन की थाह ,
कठिन है अलि, इस जग की राह ,
विकल होकर गा उठते प्राण !
शाप है यह, या है वरदान ?

रुदन से भीगा अंचल छोर ,
ढूँढता मन ममता की डोर ,
हो गई तब भावुक अनजान !
शाप समझूँ मैं या वरदान ?

बनाया नव स्वप्नों का देश ,
मिला फूलों से कुछ संदेश ,
खिली उस दिन पहली मुसकान !
शाप थी वह, या थी वरदान ?

बिन खिले मुरझाए वे फूल ,
स्वप्न बन गए हृदय के शूल ,
किया मैंने दुख का आह्वान !
शाप था वह, या शुभ वरदान ?

निशा के अंधकार को चीर ;
झिल्लियों की झनकार अधीर ,

कहा करती पा कर सुन सान
'व्यर्थ है शाप, व्यर्थ वरदान!'

हार में होगी मेरी जीत,
पूर्ण होगा जीवन - संगीत,
रहेगा शेष अश्रु का दान!
शाप होगा वह, या वरदान?

कवि का जीवन गीत निराला

प्राणों में केवल दुख भाता,
स्वप्नों के जग में सुख पाता,
अपने भावों में बह जाता,
पीता है जीवन की हाला!

अधरों में मुसकान अजानी,
एक वेदना-पूर्ण कहानी,
छिपा हुआ आँखों का पानी,
अलि, ऐसा है कवि मतवाला!

पक्षी भूल गए अपना स्वर,
झूम रहे तारे अम्बर पर,
पागल कवि का गीत मनोहर,
प्राणों को बे सुध कर डाला!

मुझको छलकर क्या पाओगे ?

मुझको छलकर क्या पाओगे ?
ओ निर्मोही, क्या न कभी भी
जीवन में तुम पछताओगे ?

रात बिताई है आँखों में
आसमान के तारे गिन कर,
बिखर पड़े वे ही मुक्ताफल
दिन में मेरे आँसू बनकर,
किसको प्यार किया है तुमने ?
निष्ठुर ! क्या बतला जाओगे ?

मुझे रुलाकर इस जीवन में
और किसी का हास चाहते,
दे कर कटु अभिशाप मुझे तुम
जग से क्या उपहार माँगते ?
ओ नादान ! कभी क्या मेरे
मन का दुःख समझ पाओगे ?

रोनेवाली इन आँखों में
कैसे मृदु-सौन्दर्य मिलेगा ?
पहले सूख गई जो डाली
उसमें कैसे फूल खिलेगा ?
भू पर बिखरी पंखुरियों को
क्या कह कर फिर समझाओगे ?

जलता है पतंग दीपक में
पर जग कहता दीपक जलता,
वही विजय पाता क्यों जग में
जो चुपके औरों को छलता?
मुझे पतंग बना कर क्या तुम
स्वयं दीप ही बन जाओगे?

काले बादल हैं घिर आए !

काले बादल हैं घिर आए !
दूर किसी अनजान देश से
किसका क्या संदेशा लाए ?

मेघदूत ये कालिदास के,
विरहीजन के अधिक पास ये,
रहते क्यों इतने उदास ये ?
चारों ओर गगन में छाए !

कवि के मन में भाव जगाते,
उमड़-घुमड़ नभ में छा जाते,
शस्य श्यामला भूमि बनाते,
जग ने गीत निराले गाए !

आशा है कृषकों के मन में,
शीतलता भरते जीवन में,
नाच उठे मयूर दल वन में,
सखि, बादल सब के मन भाए ।

क्यों न शिथिल होते जग बंधन ?

क्यों न शिथिल होते जग बंधन ?
चिन्ताओं से मुक्त नहीं मन !

सोचा करते हैं हम मन में,
'पक्षी नहीं बँधे बंधन में,
किन्तु नीड़ रचते हैं वे भी
और खोजते हैं नित भोजन !'
चिन्ताओं से मुक्त नहीं मन !

खिले फूल को देख डाल पर,
विह्वल हो उठता पागल उर,
किसी समय गिर जाएगा वह
अपने को कर भू पर अर्पण !
क्यों न शिथिल होते जग-बंधन ?

बँधे हुए हैं नर औ नारी,
जीवन का आकर्षण भारी,
अणु-अणु भी हैं बँधे विश्व में
नियम बद्ध रहते जड़-चेतन !
क्यों न शिथिल होते जग-बंधन ?

पावस में नदियाँ भर जातीं,
उमड़ घुमड़ कुछ गाने गातीं,

दूर-दूर से 'आओ' कहता
सागर का गुरुतर आकर्षण !
चिन्ताओं से मुक्त नहीं मन !

चंचल-शिशु-सा बहता निर्झर,
प्राणों को सुख से जाता भर,
लगन लगी किसके मिलने की ?
जागा अन्तर में नव-यौवन !
चिन्ताओं से मुक्त नहीं मन !

बिन बंधन कैसे रह पाए;
बंधन ही मानव को भाए,
मानव निज इच्छा से बंदी
पल-पल में आह्वान विसर्जन !
क्यों न शिथिल होते जग बंधन ?

व्यर्थ हुए क्या गाने मेरे?

अंधकार से पूर्ण हृदय में
गीतों से ही शान्ति मिली थी।
रोते गाते बिता दिए थे
निशि, दिन, पल, छिन, साँझ, सबेरे!

मतवाली हो झूम उठी थी
संध्या की रक्तिम आभा में,
उस लाली के सूनेपन में
बिखर पड़े थे भाव घनेरे!

किन्तु न अब तक समझ सका जग,
जीवन की यह करुण कहानी!
क्या न किसी का उर छू पाए
बहते आँसू के कण मेरे?

आज नहीं दुख की वह ज्वाला
जिसमें जीवित ही जल जाऊँ,
विकल भाव उठते हैं मन में
अमर शक्ति के हैं ये प्रेरे।

कौन मूल्य है इन गीतों का
नीरस, जीवन-हीन बने जो,
भर न सके उत्साह हृदय में
कहलाएँगे स्वप्न अँधेरे!

वर्षा की बूँदों का जीवन !

अनजाने ही हो जाता है मन में यह कैसा आकर्षण !

मैं एकाकी बैठी रहती,
बूँदों को ही देखा करती,
मेरे आँसू भी उमड़-उमड़ कर रहे क्यों आज जलवर्षण !

कितनी सूखी नदियों का उर,
पावस ऋतु में जाता है भर
पर मेरे ये कोमल आँसू शीतल कर पाए किसका उर !

स्वप्नों से भरे दिवस बीते,
अब हैं वसन्त, पावस रीते,
इन बूँदों ने मेरे मन में, भर दिया सजनि क्यों अपना मन ?

जग में मिलती है शान्ति कहाँ ?
पल-पल जीवन में भ्रान्ति यहाँ
क्यों पा न सकी हूँ मैं अब तक अपनी ही आत्मा का चिर-धन

वर्षा की बूँदों का जीवन !

आओ मेरे पाहुन बनकर !

आओ मेरे पाहुन वन कर !
करती हूँ आह्वान तुम्हारा
आँखों में केवल आँसू भर !

वीते यौवन की समाधि पर
क्षण भर दीप जलाऊँगी मैं,
धूलि भरी वीणा कर में ले
भूला गीत सुनाऊँगी मैं।
क्या जाने, हो अन्तिम अवसर !
आओ मेरे पाहुन वन कर !

जिस दिन फूलों की सुगन्ध में
मानव को विश्वास न होगा,
उस दिन प्रेमी का इस जग में
पल भर भी आवास न होगा।
भूलूंगी मैं भी अपना स्वर !
आओ मेरे पाहुन वन कर !

कूक उठी थी जव रसाल में
मधु स्वर से कोयलिया काली,
अनजाने पा ली थी मैंने
प्राणों में पीड़ा मतवाली।
सिहरन भर लाया पागल उर !
आओ मेरे पाहुन वन कर !

दीपक की करके प्रदक्षिणा
किए शलभ ने प्राण समर्पण,
उसके झुलसे पंखों पर ही
मेरी का आँखों जल-वर्षण
मिलते सुन्दर और असुन्दर!
आओ मेरे पाहुन बन कर!

उड़ जा रे मन पंछी मेरे !

उड़ जा रे मन पंछी मेरे !
तेरी मुक्ति हेतु गाती हूँ
निशि दिन पल छिन साँझ सबेरे !
उड़ जा रे मन पंछी मेरे !

कब तक पड़ा रहेगा पागल ?
निज निर्मित इस कारागृह में ?
मध्य निशा सुनसान प्रहर में
द्वार खोल दूँगी मैं तेरे !
उड़ जा रे मन पंछी मेरे !

लघु सुख-दुख के ताने-बाने
बुनते ही रहते जीवन पट ,
तेरा कार्य पूर्ण हो पाया
क्यों फिर तुझको चिंता घेरे ?
उड़ जा रे मन पंछी मेरे !

दीपशिखा हिल-हिल कर कहती
ज्योति रूप ही है अविनश्वर ,
झुलसे पंख शलभ के काले
रहते अंधकार को घेरे !
उड़ जा रे मन पंछी मेरे !

कटे पंख तेरे क्या जाने
कैसा है स्वतंत्रता का सुख?
आलिंगन कर आज सत्य को
दूर - दूर होंगे सपने रे!
उड़ जा रे मन पंछी मेरे!

जीवन में जब सपने आते !

जीवन में जव सपने आते !
प्राणों का दुख भी सुख वनता
आँखों में आँसू न समाते !

कलियों की मुस्कान सुहाती
फूलों का खिल-खिलकर हँसना ,
दुख सुख के ताने - वाने में
अपनी ही इच्छा से फँसना ,

चाँद, सितारे, ऊषा, रजनी
मन में कौतूहल उपजाते !
जीवन में जब सपने आते !

पगली सी काली कोयलिया
जब अपनी मृदु कूक सुनाती ,
सुनते हैं सब मुग्ध हृदय से
भावुक मन में हूक जगाती ,

पागल भौंरे वन उपवन में
चूम कली को कुसुम बनाते !
जीवन में जव सपने आते !

नहीं जानता पथ में रुकना
निर्झर - सा नित वहता रहता ,

अपनी राह चला करता मन
वह अबाध गति झर-झर करता ,

उस उज्ज्वल फेनिल जल के कण -
कण भी तब मानो मुस्काते !
जीवन में जब सपने आते !

एक अनोखी दुनिया बनती
इच्छा होती है अनजानी ,
नहीं सुहाता मन को बंधन
करता ही रहता मनमानी ,

आकर्षित करते हैं अणु-अणु
प्राण प्रकृति में ही मिल जाते !
जीवन में जब सपने आते !

कविता-क्रम

कविता		पृष्ठ

कविता		पृष्ठ

कविता		पृष्ठ